Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Multi-Disciplinary - ISSN : 2279-0268

Continuous Issue - 21 | August – September 2017

'डूब' में विस्थापन की त्रासदी

भूमंडलीकरण के इस दौर में विगत दो तीन दशकों में कथा साहित्य के क्षेत्र में जो बदलाव के मंजर नजर आए हैं, वह सचमुच समाज की दर परत खोल रहे हैं। मल्टी मीडिया की दुनिया में भी गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, अत्याचार, विस्थापन, अनैतिकता, भ्रष्टाचार जैसे दूषणों ने अपना मुँह खोल रखा हैं। वर्तमान दशकों में जो कथा साहित्य लिखा जा रहा हैं, वह इन्हीं सब बातों का चिट्ठा प्रस्तुत कर रहा हैं। कहीं लेखक का भोगा हुआ यथार्थ होता हैं, तो कहीं आँखों देखा सच! स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा विकास के नाम पर बहुत सारी परियोजनाएँ अमल में आयी, देश के लोगों में आशा की किरन नजर आने लगी कि उनकी दशा और दिशा सुधरेगी। उनकी गरीबी और बेरोजगारी दूर होंगी। लेकिन लोगों की अपेक्षाओं के उपर पानी फिर जाता हैं। बाँध परियोजना गाँव के किसान और आदिवासी समाज के लिए विस्थापन की दर्दनाक त्रासदी भी साथ लेकर आयी।

वीरेन्द्र जैन ने इसी कड़वे सच के दर्शन हमें 'डूब' उपन्यास में करवाए है कि किस तरह लोग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी प्राथमिक जरूरतों के लिए तरसते है। राजनीतिक विकास के तले किसानों के हर सपने को कुचला जा रहा है। 'डूब' का हर व्यक्ति विकास के नाम पर जो नयी-नयी परियोजनाएँ उनके सामने आती है, उससे संघर्ष करता है। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भूख, भय, गरीबी, लाचारी, अत्याचार, शोषण, दुःख और राजनैतिक हथकंडों को झेलने के लिए विवश है। लेखक ने बड़ी गहराई में जाकर जिन्दगी जीने की इस पीड़ा को व्यक्त किया है। जिससे हम कभी भी आँखें नहीं चुरा सकते। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक जिस जमीन से जुड़ा रहता हैं, जहाँ वह खेती किसानी कर अपना व अपने परिवार का पालन पोषण करता हैं वही जमीन जब उससे छीन ली जाती हैं, तब उस जमीन से उखड़ने का दर्द असह्य बन जाता हैं। आधुनिकता और विकासवाद ने सबसे ज्यादा अगर किसी को प्रताड़ित किया हैं तो वह है गरीब जनता व सर्वहारा वर्ग।

लड़ैई गाँव के लोग समझते थे कि इस विकास योजना में उनका उद्धार हो जाएगा, अब खुशियाँ आएँगी। लेकिन गलत, विकास योजना तो उनकी एक-एक खुशी का ग्रास कर रही थी। बेतवा नदी के राजघाट पर बाँध बनाने की योजना बनी की लड़ैई गाँव 'डूब- क्षेत्र' में आ गया। और तुरंत ही लड़ैई और आस-पास के क्षेत्रों को सारी सुविधाएँ देना बंध हो गया। कृषकों की जमीनें ले ली गई। उनके मकान भी छीन लिए गए। गाँव के रईस और साहूकारों की जमीन को छोड़कर बाकी सारी जमीन हड़प करके ले गए। अब किसानों के पास जमीन के बदले में जो थोड़े बहुत रुपए आए, उन्हें देखकर साहूकारों की जीभ से लार टपकने लगी। साहूकारों ने किसानों से अपने पुराने कर्ज वसूले और शहर जाकर आराम से रहने लगे। लड़ैई में पानी ऊपर से नीचे गिराया जाएगा, इस गाँव में बाढ़ भी बार- बार आएगी। इसलिए साहूकार सोचते है, कि अगर गाँववाले अपनी बची हुई जमीन सस्ते दाम में बेचकर चले जाए, तो वह सरकार से उसी जमीन के दुगुने भाव वसूले। " लेखक आदि से अंत तक गाँव के जीवन-यथार्थ के विविध आयामों को खोलता चलता है, और व्यवस्था की सारी विसंगतियों को उद्घाटित करता है। सब लोग बारी बारी गाँव छोड़कर चले जाते है, क्योंकि गाँव में कुछ रखा ही नहीं है। किन्तु कस्बे में जाकर भी भिन्न-भिन्न तरह से गाँव का अर्थ दोहन करते रहे। राजनीति और प्रशासन ने गाँव के लिए कुछ किया नहीं, बस डूब के नाम पर गाँव खाली करा लिया। गाँववालों को

मुआवजे देने की प्रक्रिया में अद्भुत ताल-मेल के साथ राजनीतिज्ञ, प्रशासक और व्यापारी वर्ग गांवों को लूटते है। बाँध बाँधने पर भी गाँव नहीं बचता।"[1]

स्वतंत्रता के बाद कई पंचवर्षीय योजनाएँ, विकास योजनाएँ बनाई गई। जिसका सबसे अधिक भोग बनना पड़ा किसान और मजदूरों को। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमारेखा पर बेतवा नदी पर राजघाट नामक बाँध बनने की योजना अमल में आयी। समय बीतता चला जाता है, पर बाँध शुरू नहीं होता। "फिर यकायक बाँध का काम शुरू होता है। लोगों की जमीन, मकान, कुएँ, पेड़ वगैरह सरकार द्वारा किश्तों में अधिग्रहीत किए जाने लगते हैं।"[2]

अपनी भूमि के प्रति होनेवाले लगाव की वजह से लोग गाँव छोड़ नहीं पाते। मगर फिर भी गाँव के किसान और मजदूरों को अपनी ही जमीन से उखाड़ा जा रहा है। गाँव का हर आदमी जिस जमीन के साथ जुड़ा है, उसे वे किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते। क्योंकि उस जमीन के साथ उनकी संवेदनाएँ, सुख-दुःख, स्मृतियाँ आदि गहरे रूप से जुड़े हुए होते हैं। गाँववालों को जबरदस्ती कानून का भय दिखाकर जमीन से बेदखल कर दिया जाता है। तब इस उपन्यास का प्रमुख पात्र माते आक्रोश में आकर कहते है कि "कोई बताता क्यों नहीं हमें कि कब खाली करना होगा गाँव? इतनी बड़ी-बड़ी बातें कर गई सरकारजू! तनिक यह भी बता देती कि हमें ले कहाँ जाओगी यहाँ से उखाड़कर?"[3] किसानों से अपनी जमीन छीनकर उनके पुनर्वास का कोई मुकम्मल इंतजाम नहीं किया जाता। मुआवजे के लिए इनकी आँखें राह देख रही हैं। मगर फिर भी इन्हें कुछ नहीं दिया जाता। जैसे ही यह क्षेत्र 'डूब' क्षेत्र घोषित होता है, इन्हें सारी सुविधाएँ देना बंद हो जाती हैं। इस क्षेत्र के लोगों से उनके मदरसा और व्यवसाय भी छिन लिए जाते हैं। माते कहते हैं- "हमसे तो बस लेने ही लेने का रिश्ता है न तुम्हारा। हमें तो यहीं फेंककर मारना है न तुम्हें! यही डुबोना है न।"[4] और गाँव छोड़कर ये भोले-भाले किसान जाए भी तो कहाँ? "हम अभागे की दुनिया देखी ही नहीं, फिर जाएँ तो जाएँ कहाँ? खाली हाथ, सपाट दिमाग लेकर जा भी कहाँ सकते हैं हम!"[5] विस्थापन की वजह से किसानों की हालत और भी दयनीय हो जाती है। क्योंकि आय का मुख्य साधन खेत बाँध योजना में चला जाता है। तेंदू पत्ते का व्यवसाय भी छीन लिया जाता है। ऊपर से बाँध निर्माण का जो कार्य चल रहा है वहाँ पर इन्हें मजदूर के रूप में भी नहीं रखा जाता। क्योंकि सरकार का मानना है, कि काम के लिए ये मजदूर अपने तीज-त्यौहार मनाना नहीं छोड़ेंगे। अगर दूर क्षेत्र के मजदूर होंगे तो तीज-त्यौहार के लिए घर जाने की नौबत ही नहीं आएगी। आय का कोई साधन न होने की वजह से अनाज उगानेवाले किसान ही अनाज के दाने-दाने के लिए तरसने लगे। उनके मुँह से निःश्वास निकलने लगे कि "कैसा फरेब है ये? कितना बड़ा झूठ है ये? कैसी खुशहाली है ये? कैसा बाँध है ये? जो हमें लीलेगा वह औरों को भी लीलेगा।"[6]

विस्थापित किए गए क्षेत्र के अंतर्गत "बारी, टोढे, शंकरपुर, पंचमनगर, सिरसौदिया, सिद्धपुर, केशोपुर"[7] इत्यादि गाँव आते हैं। नदी के पार के सारे गाँव उजाड़कर वहाँ "इंजीनियर, ओवरसियर, बाबू मजदूर बसेंगे।"[8] एक को उजाड़कर दूसरे को बसाने का इंतजाम किया जाता है। "किसान का एक गुण यह भी है कि वह छोटी-सी खुशी के आगमन पर लंबे-लंबे दुःखों को भुलाकर भविष्य की आशा में डूब जाता है।" [9] गाँव के किसानों को इस बात की खुशी है कि खेत और मकान के बदले में सरकार से थोड़ा बहुत मुआवजा तो मिलेगा, जिससे हम अपना गुजारा कर लेंगे। मगर अफसरों के द्वारा उनकी सिंचित भूमि को भी असिंचित साबित कर बताया जाता है कि "यहाँ कई बरस तक जो बाढ़ आती रही उसमें सैकड़ों खेत स्वाहा हों गए। अब उन खेतों का मुआवजा बाढ़-विभाग दे तो दे हम किस सूरत में दे सकते हैं?[10] सहज है अब गाँववाले चारों ओर से निराश होते चले जाते है। उन्हें किसी का भी सहारा नहीं मिलता। सरकार तो विस्थापितों को लूटने का ही काम करती है। "यह सरकार। यह गरीबों को सताएगी! उन्हें सताएगी जिन्हें भाग्य, भगवान, धनवान सभी पहले ही सताने पर आमादा है?[11] बरसों तक बाँध का काम चलेगा। तब तक इनके भटकाव का

कोई अंत नहीं। गाँव में स्थान-स्थान पर गहरे गड्ढे खुदवा दिए गए है। जिससे गाँव का कोई व्यक्ति गाँव से बाहर नहीं जा सकता। और बाहर का कोई व्यक्ति गाँव में नहीं आ पाता। बाहरी समाज से गाँव को काट दिया जाता है।

विस्थापितों का सफर अंतहीन है। अब बाँध योजना को बदलकर वहाँ अभ्यारण बनाने का सुझाव अधिकारियों के द्वारा दिया जाता है। ताकि वहाँ जंगली जानवर बेखटके रह सके। माते अचानक तैस में आकर बोलते है कि, "तो अभी जो रह रहे है, यहाँ, उन्हें क्या आदमियों में लेखती हैं सरकार? सरकार की निगाह में भी यहाँ जानवर ही रह रहे है। जानवर भी ऐसे जिनके न दाँत है, न पंजा, फिर हमें कहाँ खदेड़ेगी यह सरकार? कब लगाने आ रही है हाँका?"[12] माते अरविंद पांडे से कहते है कि कोई इस सरकार को क्यों नहीं समझाता कि "आदमियों की कीमत पर जानवरों की रक्षा करना चाहती है यह?"[13] कोई इनका हाथ पकड़कर रोकनेवाला भी तो नहीं है कि, भई ऐसा अनर्थ किस लिए? क्या गरीबों के जीवन का कोई मूल्य नहीं? गाँव को उजाड़कर पशुओं के लिए अभ्यारण क्यों? गाँव को विस्थापित कर, मनुष्य को मारकर विकास योजनाएँ बनाई जाती है।

'डूब' की विस्थापन की पीड़ा और दर्द 'पार' में आकर और भी गहरी हो जाती है। विस्थापित होते गाँव की असर आदिवासियों के समाज पर भी पड़ती है। लालची और स्वार्थी जमींदारों की निगाह अब आदिवासियों की जमीन पर टिकी हुई है। एक दिन धूरेसाव ने जीरोन खेरा के मुखिया पर गाज गिरा दी "कि पाँच पीढ़ी पहले हमरे पुरखों ने बसाया था जीरोना हमरे पास सुबूत है इसका। हम मालिक है जीरोन के। तुम जबरन उस पर काबिज हो।...अब ये गाँव गाँव से उखड़े हमरे किसान बसेंगे वहाँ।"[14] इन आदिवासियों को डरा-धमका कर खेरा छोड़ने पर मजबूर किया जाता है। खेरे का मुखिया इसलिए चिंतित है, कि खेरे से बाहर की दुनिया उसने कभी देखी नहीं थी। और गाँव के लोग तो उन्हें गाँव में घुसने भी नहीं देते। अब अगर निर्मल साव उन्हें इस जंगल से खदेड़ देगा, तो वह जाएँगे कहा? जंगलों की अवैध कटाई से अब जंगलों में बहुत घूमने पर भी अपनी जरूरतों की चीजें नहीं मिल पाती। मुखिया कहते है "हम कंद-मूल, फल-फूल, जड़ी-बूटी, जलावन-छाजन कहाँ से पाएँगे? हमरी तो डांग ही आसरा है।"[15] गाँव का बरेदी मवेशी चराने के लिए जंगल में आने लगता है। तब खेरेवाले सोचते है, कि अगर गाँव के मवेशी सारा चारा चर गए तो हमरे मवेशी क्या खाएँगे? "गाँववाले हमरी डाँग, हमरा खेरा रिता डालेंगे, तब हम कहाँ जाएँगे ? आखिर हमने इनका क्या बिगाड़ा है?"[16] विस्थापन का दुष्प्रभाव आदिवासियों को भी नहीं छोड़ता। मास्साव, बरेदी, साहूकार, जमींदार आदि सब गाँव छोड़कर जाने लगते है। माते जैसे कई गाँववाले ऐसे है, जो अपने गाँव को छोड़कर नहीं जाना चाहते। वे अंत तक गाँव की दशा और दिशा के साक्षात् गवाह रहते है। सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि "गाँव को विकास का सहयात्री नहीं बनाया गया, उसे साधन-भर समझा गया। सत्ता और शहर की इस साजिश में वे सामंतवादी शक्तियाँ भी सहयोगी हुई जो गाँव को अपनी जागीर बनाए रखना चाहती थी।"[17]

विस्थापित होते समाज की पीड़ा और त्रासदी को वीरेन्द्र जैन ने 'डूब' उपन्यास में बखूबी प्रस्तुत किया है। उनकी दीन-हीन स्थिति को लेखक बड़ी शिद्दत के साथ उभार पाए है। इसका प्रमुख कारण यही है कि इस डूब क्षेत्र के साथ लेखक की गहरी संवेदनाएँ जुड़ी हुई है। इसी क्षेत्र का सिरसौद गाँव लेखक की जन्मभूमि है, जो इस बाँध-योजना के तहत स्वाहा हो गया। उन्होंने इस यथार्थ को दिल की गहराई से महसूस किया, जो 'डूब' के रूप में फूट पड़ा!

संदर्भ सूची

I. वीरेन्द्र जैन का साहित्य, सं. मनोहरलाल, पृ. 102,103
II. वीरेन्द्र जैन का साहित्य, सं. मनोहरलाल, पृ.121
III. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ. 183
IV. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ. 187
V. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ. 187
VI. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ. 108
VII. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ. 109
VIII. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ. 187
IX. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कृषक- जीवन, डॉ. उत्तमभाई पटेल,पृ. 64
X. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.231
XI. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.108
XII. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.279
XIII. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.279
XIV. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.93
XV. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.30
XVI. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.31
XVII. वीरेन्द्र जैन का साहित्य, सं. मनोहरलाल, पृ.127

****

डॉ. उमा डी. मेहता
आसिस्टन्ट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
एम.पी.शाह आर्ट्स एन्ड़ सायन्स कॉलेज
सुरेन्द्रनगर

Copyright © 2012 - 2017 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat